कोरोना काल के संकट की चुनौतियाँ और सीख

डॉ. तरुण गुप्ता*

भारत और विश्व के लिए अब तक साल 2020 बहुत बुरा बीता है। हर स्तर पर इसने घाव ही दिए हैं। इस वैश्विक मंदी की तरफ बढ़ते दौर में कोरोना का घाव इतना गहरा है कि कई देशों की अर्थव्यवस्थाएँ चौपट हो चुकी हैं। बेरोजगारी और भुखमरी बहुत ज्यादा बढ़ी है। कोरोना से पहले का भारत जो विकसित होने का सुनहरा ख्वाब संजो रहा था, कोरोना के कारण अपनी अर्थव्यवस्था और सकल घरेलू उत्पाद को ऋणात्मक होने से बचाने की जद्दोजहद कर रहा है। इस बीमारी ने भारत को कम से कम बीस साल पीछे धकेल दिया है। कई अर्थशास्त्रियों का मानना है कि इस समय वैश्विक अर्थव्यवस्था की हालत 1929 की वैश्विक आर्थिक मंदी से भी बुरी है। सरकार के आर्थिक पैकेज से सिर्फ स्टॉक मार्केट में ही सुधार दिखा है। तकनीकी रूप से बाजार को चाहे कितना बढ़ा ले पर उसके फंडामेंटल बेहद कमजोर हैं, यह किसी से छिपी बात नहीं है। दरअसल अर्थव्यवस्था तब तक पटरी पर नहीं आ पाएगी, जब तक हम इस बीमारी की वैक्सीन या दवा नहीं खोज लेते।

भारत ने शुरू में इस बीमारी का मुकाबला करने में लॉकडाउन का सहारा लिया। सोशल डिस्टैंसिंग का सहारा लिया। और एक नजर में यह बहुत अच्छे फैसले थे। पर जब कमाई के साधन छिन जाएँ, तो गरीब तबके के लोग क्या खाएं और अपने बच्चों को क्या खिलाएँ। इस बीमारी के बीच सबसे ज्यादा बुरी हालत से प्रवासी मजदूर गुजरे, लाखों की संख्या में मजदूर अपने बीवी, बच्चों सहित नंगे पैर सैंकड़ों मील का सफर तय करने पर मजबूर हुए। लॉकडाउन के दौरान प्रवासी मजदूरों के पलायन को दूसरा विभाजन तक कहा गया और सच ही है, हमारी पीढ़ी के लोग जिन्होंने विभाजन के सिर्फ किस्से सुने थे,उसने उस भयावहता का पहली बार अनुभव किया। हम इतने असहाय कभी नहीं थे कि कोई मदद चाहे और हम घर में दुबके सिर्फ उसकी हालत पर दुःख व्यक्त करते रहें। संभवतः ये दौर हमारी पीढ़ी का सबसे बुरा दौर है। कोरोना काल के संकट में हम अमानवीयता की पराकाष्ठा भी साथ ही देख रहे है। इसके लिए किससे सवाल करें - सरकार से, मीडिया से या फिर खुद से। क्योंकि दोषी तो हम सब ही हैं। हमने प्रवासी मजदूरों को बिना खाए पीए, थके हारे, कभी बच्चों को तो कभी सूटकेश को कंधों पर लादे जाते हुए देखा है। हम एक ओर विकसित राष्ट्र बनने का सपना देखते हैं और दूसरी ओर हम अपने मजदूरों और उनके परिवारों का ध्यान नहीं रख पाते। क्या कोई राष्ट्र अपने हाशिये के समाज को छोड़कर विकसित हो सकता है। अगर ऐसे विकसित हो भी जाए तो क्या वह विकास वास्तविक विकास माना जाएगा।

सवाल सरकार से भी बनता है कि जब लॉकडाउन किया गया तो क्या सरकार को इस समस्या का बिल्कुल अंदाजा नहीं था कि रोज कमाने और रोज खाने वालों के जीवन पर कितना बड़ा संकट आएगा। अगर पता था तो सरकार की क्या नीति रही। कैसी विडंबना है कि हम अपने ही देशवासियों के साथ परदेसियों जैसा सलूक कर रहे हैं। वर्तमान समय में अर्थव्यवस्था के जो हालात हैं, उसके लिए सिर्फ हम भारतीय ही नहीं बल्कि कोई भी देश तैयार नहीं था। हालांकि कोई भी आपदा या परेशानी बता कर नहीं आती है। अगर सूचित करेगी तो परेशानी थोड़े ही होगी। लेकिन इस आपदा की दस्तक हमें मिलने लगी थी। तब भी हमने जो कदम उठाए वो पर्याप्त नहीं थे। ये सरकार और हम सबके के लिए एक चुनौती थी और कहना न होगा कि सरकार और हम इस चुनौती को संभालने में विफल रहे। कुछ तो जागरूकता की कमी और कुछ रोजी-रोटी का संकट।

सोचिये जरा, छोटे-छोटे बच्चे, बीमार बूढ़े, गर्भवती महिलाएं बोझा ढोए चली जा रही हैं। नन्हें बच्चों तक जिन्हें बोझ का मतलब तक नहीं मालूम बोझा लादे, बिना चप्पलों के चले जा रहे हैं। इस दौरान जैसी तस्वीरें अखबारों और मीडिया में आई हैं, वो अमानवीय मालूम होती हैं। किसी माँ ने अपने एक बच्चे के सामने दूसरे बच्चे को जन्म दिया और चल बसी, बच्चा उसकी छाती के पास बिलख रहा है। कोई बच्चा किसी अटैची या सूटकेस पर औंधा पड़ा सामान की तरह खींचा जा रहा है। कोई मजदूर रास्ते में पड़े कूड़े के ढेर में बचे हुए खाद्यसामग्री को खाने को मजबूर है, ये सब तस्वीरें बहुत वीभत्स हैं, साथ ही सवालिया निशान हैं हम पर। हाईवे पर कितने मजदूर सड़क दुर्घटना में मारे गए, रेल की पटरियों पर उनके शव क्षत-विक्षत हालत में टुकड़ों में बिखरे पड़े हैं। और साथ में पड़ी हैं रोटियाँ। इन रोटियों के लिए ही

* सहायक प्रोफेसर, शिवाजी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय)।

वो और उनका परिवार यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ पलायन करने को मजबूर हैं। उनके अपने राज्य उन्हें घुसने नहीं दे रहे। इस महामारी ने बहुतो की कलई खोलकर रख दी है। हमने अपने भीतर के भारतीयता को ही नहीं बल्कि इंसान को भी मार दिया है, जिसके लिए दूसरे का दर्द अपना दर्द ना बने वहाँ कैसी इंसानियत।

कोविड 19 बहुत सी समस्याओं को लेकर आया। कोई संस्थान, बैंक, इंडस्ट्री, सरकार, मीडिया न तो इसके लिए पहले से तैयार था और न ही किसी को यह पता था कि यह लड़ाई इतनी लंबी चलने वाली है। सबको लगा कि कुछ दिन बाद सब ठीक हो जाएगा। पर एक लॉकडाउन के बाद भी जब केस बढ़ते चले गए तो लोगों की जमापूंजी खत्म होने लगी, राशन की दिक्कतें आने लगी, लोगो का धैर्य जवाब दे गया। सरकारों ने छुटपुट कोशिशें कीं जैसे खाना-बांटना, पैसे-ट्रांसफर कर फौरी राहत देना। पर ये सिर्फ कुछ ही दिनों में खत्म हो गया। ऐसे समय में कब तक वे घर में खुद को बाँधे रखते। उन्होंने अपने गाँव और परिवार वालों के पास जाना ठीक समझा होगा। सोचा होगा मरें तो कम से कम अपने घर परिवार वालों के साथ। अपने ही मुल्क में वे खुद को बेगाना महसूस करने लगे।

इस कोरोना काल में बेरोजगारी, जमापूंजी की समाप्ति, सैलरी न मिलना कोढ़ में खाज बन गए। सरकार ने गरीब तबके के लोगों की सहायता करने के लिए कई बार लोगों से अपील की और कहा कि आप किसी का वेतन न रोकें। पर सरकार ये भूल गई कि वेतन कोई तब देगा जब उसको खुद वेतन मिले। बड़ी-बड़ी इंडस्ट्री का एक और दो तिमाही का परिणाम बता देगा कि उन्हें कितना बड़ा घाटा हुआ है। मारुति जैसी कंपनी ने घोषित किया कि मार्च में उनकी एक भी गाड़ी नहीं बिकी। ये खबर उद्योगों की स्थिति को समझाने के लिए काफी है। बड़े उद्योग तब भी कई महीनों तक सैलरी दे सकते हैं, किन्तु छोटी फैक्ट्रियों का क्या। सरकार का कहना है कि उसने करीब बीस लाख करोड़ का पैकेज दिया पर वो निचले तबके तक पहुँचा हो, ऐसा नहीं दिखता। जमीनी स्तर पर हालात बेहद खराब हैं। बैंकों का एनपीए बढ़ता जा रहा। यस बैंक का संकट किसी से छिपा नहीं है। सरकारी बैंकों - भारतीय स्टेट बैंक और पंजाब नैशनल बैंक की हालत भी कोई बहुत अच्छी नहीं है। ये सरकार की नई चुनौतियाँ हैं, जो आने वाले समय में उभरेंगी।

दरअसल हमें एक कमेटी बनानी चाहिए थी जो प्रधानमंत्री और सभी 30 मुख्यमंत्री का मंडल होता। कोविड-19 से बचने के लिए जो भी सुझाव किये जाते वो सभी इस समिति के सुझावों से संभव हो सकते थे। हमें दल वैविध्य को दरकिनार कर एकजुट होकर इस बीमारी से लड़ना चाहिए था। सभी राज्यों के स्वास्थ्य मंत्रियों को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग कर बैठक करनी चाहिए थी, वो भी कितनी की गई ये सब जानते हैं। हालत ये हो गई कि कई राज्यों के मंत्री और उनका स्टाफ इस बीमारी की चपेट में आ गया। और यह देखना भी दुखद है कि ऐसे समय में भी कुछ मंत्री और नेता फिल्म सैलिब्रिटी के साथ पार्टियां कर रहे थे और उसमें शरीक हो रहे थे। इससे जनता के बीच बहुत बुरा संकेत जाता है।

इस संबंध में विश्व स्वास्थ्य संगठन के निर्देश भी बहुत स्पष्ट नहीं थे। विश्वस्वास्थ्य संगठन से मिलने वाले समय-समय पर परस्पर विरोधी दिशा-निर्देशों के कारण हमारी सरकार की कोविड सम्बन्धी नीतियाँ स्वाभाविक रूप से विरोधाभास युक्त होती गयीं। यही कारण रहा कि उनके पास इससे निपटने का कोई कारगर एवं असरदार तैयारी नहीं थी। पहले सरकार ने कहा कि कोविड-19 से लड़ने के लिए एन 95 मास्क काफी उपयोगी है। तब केस हजार में थे। जब केस लाखों में हो गए तो कहने लगे कि एन 95 मास्क बहुत उपयोगी नहीं है। पहले कहते थे कि हवा से ये वायरस नहीं फैलता। अब कह रहे हैं कि हवा से भी यह वायरस फैल सकता है। इस विरोधाभास ने कई अफवाहों को भी जन्म दिया। लोग बातें करने लगे और न्यूज चैनल भी इन अफवाहों पर गौर करने लगे। कुछ महानुभावों ने कहा कि गर्मियों में यह वायरस खत्म हो जाएगा, पर देखा गया कि जैसे जैसे गरमी बढ़ी असर और फैलाव भी बढता गया। तथापि विश्वस्वास्थ्य संगठन के परस्पर विरोधी सुझावों के बावजूद हमारी सरकार ने काफी हद तक स्थितियों को संभालने की पुरजोर कोशिश भी की।

कोरोना काल का सबसे दुखद पहलू यह रहा कि जो बीमारी विदेश से आई है, जो हवाई जहाज से आई है, जिसे बड़े बड़े धनाढ्य लेकर आए हैं। उसकी कीमत झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले बेहद गरीब, रोज कमाने रोज खाने वाले कामगार चुका रहे हैं और तब भी सारा आरोप इन्हीं पर मढ़ दिया जाता है कि यही लोग बीमारी फैला रहे हैं। कैसी विडंबना है कि हम इस पर भी राजनीति कर रहे हैं। अमीरों को अस्पताल मिल जाएंगे पर गरीब सोचने लगा कि यहाँ रहकर तो वैसे भी मरना हैं। हमारी सुध कौन लेगा। मेरे बीवी बच्चों को कौन डाक्टर बिना पैसों के देखेगा। बिना खाए हम कितने दिन जिंदा रहेंगे। इसलिए अपनी जान जोखिम में डाल वो पैदल ही अपने गाँवों की ओर निकल पड़े। इस संकट के समय गुरुद्वारों ने मानवता दिखाते हुए अपने पंडाल और द्वार इन मजदूरों के लिए खोल दिए। रास्तों में खाना बाँटने और मदद करने में सिक्ख कौम ने जो जज्बा दिखाया उसे बाकि धर्म भी सीख सकते हैं। कोरोना काल के संकट में हमारा खुद से परिचय हुआ। ऐसे समय में सरकार, मीडिया और हमें मानवता के हक में खड़ा होना चाहिए, ये बुरा वक्त भी निकल जाएगा पर हमारे काम याद रखे जाएंगे।

****